P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-4*(Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

राजस्थान की जल प्रबंधन व्यवस्था में बावड़ियों का स्थान

बाबू लाल
शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान

सारांश

जल प्रकृति की अनुपम, अलभ्य और एक ऐसी संजीवनी सम्पदा है, जिसके हर कण में प्राणदायिनी शक्ति है। जहाँ जल है। वहाँ जीवन है। प्राण और स्पन्दन है, गति है, सुष्टि है और जल जीवन का मुलाधार है, जहाँ जल नहीं वहां जीवन नहीं है। निष्प्राण और निष्चेष्ट हे, जल जीवन का दूसरा नाम है। जल जीवन के लिए जितना आवश्यक है, उतना ही वह किसी राष्ट्र के लिए अनिवार्य है। अतः राज्य में जल के बिना विकास की कल्पना करना असंभव है।

जल प्रबंधन की परम्परा प्राचीन काल है। हड़प्पा नगर में खुदाई के दौरान जल संचयन प्रबंधन व्यवस्था होने की जानकारी मिलती है। प्राचीन अभिलेखों में भी जल प्रबंधन का पता चलता है। पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में भी जल संरक्षण परम्परा विकसित थी। पौराणिक ग्रन्थों में तथा जैन बौद्ध साहित्य में नहरों, तालाबों, बांधों, कुओं और झीलों का विवरण मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जल प्रबंधन का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के जुनागढ़ अभिलेख में सुदर्शन झील के निर्माण का विवरण प्राप्त है। भारत में जल प्रबंधन की विषमताएँ मिलती है। अतः जल संसाधन की उपलब्धता के अनुसार ही जल प्रबंधन की प्रणालियों विकसित होती है। जैसे हिमालय में नदी में जल प्रबंधन किया जाता है। अतः भारत में जल प्रबंधन प्रणालियाँ वहाँ के भौगोलिक परिवेश के अनुरूप विकसित हुई।

मुख्य शब्द : जल प्रबंधन, बावड़ियां, सम्पदा, संचयन, प्रबंधन

प्रस्तावना

राजस्थान में पानी के लगभग सभी स्रोतों की उत्पत्ति से संबंधित लोक कथाएँ प्रचलित है। बाणगंगा की उत्पत्ति अर्जुन के तीर मारने से जोड़ते हैं। वही भीम द्वारा जमीन पर पैर मारकर पानी का फव्वारा निकलने की कथा कहते हैं। राजस्थान के लोगों ने पानी के कृत्रिम स्रोतों का निर्माण करवाया है, ये ही पानी के पारम्परिक स्रोत है। नाड़ी, तालाब, जोहड़, बाँध, झील–सरोवर आदि कुआँ और पानी का महत्वपूर्ण स्रोत है।

कुएँ का मालिक एक अकेला व्यक्ति या परिवार होता है। जबकि बावड़ी को धार्मिक दृष्टिकोण से निर्मित करवाई जाती है। वह सभी लोगों के लिए होती है।

राजस्थान में जल संरक्षण की परम्परागत प्रणालियाँ स्तरीय है। यहाँ जल संचय की परम्परा सामाजिक ढाँचे से जुड़ी हुई है। जल स्रोतों को पूजा जाता हे। यहाँ के लोगों ने पानी के कृत्रिम स्रोतों का आविष्कार किया है। जिसके आधार पर कठिन जीवन को भी सहज बना दिया है। राजस्थान के अनेक क्षेत्रों में जल महत्व की लोक कथाएँ प्रचलित है। पिछले कुछ समय से जल संरक्षण (प्रबंधन) शब्द महत्वपूर्ण हो गया है। कई विकासात्मक योजनाएँ तथा उद्योग जगत जल संरक्षण अवधारणा से प्रभावित हुआ है। अतः तेजी से कम होता जल एवं जल संसाधन को पुर्नजीवित किया जाए, इसकी आज महती आवश्यकता हे। परम्परागत जल प्रबंधन की प्रणालियों को विकसित किये जाने से ही इस समस्या का समाधान है। जल जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। जल संरक्षण ही विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य है और जनसंख्या की अवधारणा से आठवें नम्बर पर है। देश के 55 प्रतिशत जनसंख्या राजस्थान में निवास करती है। परन्तु देश में उपलब्ध जल का मात्र 1 प्रतिशत जल ही राजस्थान में प्राप्त है।

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियों से वशीभूत यहाँ के लोगों में जल संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता परम्परागत रही है। क्योंकि वर्षा की कमी तथा सूखे की आशंका यहां हमेशा बनी रही है। इसी कारण यहाँ के राजा–महाराजाओं, सामन्तों, जागीरदारों और सेठ–साहूकारों द्वारा जल संरक्षण एवं प्रबंधन हेतु बावड़ी, झालरा, नाड़ी, कुएँ तथा जोहड़ों का निर्माण करवाया गया

जो कि स्थानीय जनता के पेयजल स्रोत रहे हैं।

वर्तमान समय में भूमिगत जल के गिरते स्तर तथा स्थानीय स्तर पर प्रचलित जल स्रोतों की दुर्दशा तथा वर्षा की कमी तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण जल संकट की विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगी है।

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियों में जल स्थापत्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ बावड़ियों का निर्माण केवल धार्मिक और कलात्मक गतिविधियों के लिए न होकर जल प्रबंधन के उद्देश्य के अन्तर्गत हुआ। नियमित वर्षा तथा चिरस्थायी नदियों के अभाव में ये वापियाँ (बावड़ियाँ) ही राजस्थान में जल की प्रमुख स्रोत थी।

शोध उद्देश्य

1. राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियों के संदर्भ में जल संरक्षण एवं प्रबंधन की दृष्टि से बावड़ियों के महत्व को उजागर करना।
2. राजस्थान में बावड़ियों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता का विस्तृत एवं गहन अध्ययन करना।
3. वर्तमान की भयावह समस्या जल संकट का समाधान करने के लिए परम्परागत जल संसाधनों का संरक्षण करना।
4. राजस्थान के इतिहास में बावड़ियाँ निर्माण के उद्देश्य एवं महत्व का अध्ययन करना।
5. बावड़ियों की वर्तमान में उपयोगिता एवं प्रासंगिकता अध्ययन करना।

साहित्यावलोकन

1. सौलंकी, कुसुम, मध्यकालीन राजपूताना का जल प्रबंधन, शोध प्रबंध, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश।
2. सौलंकी, डॉ. कुसुम (2013), भारतीय बावड़ियाँ, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली।
3. सिंह, वाई.डी. (2002), राजस्थान के कुएँ एवं बावड़ियाँ, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, जोधपुर

इस शीर्षक पर अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है।

अध्ययन विधि

प्रस्तुत शोधकार्य में 'सर्वेक्षण विधि' का चयन किया गया है। जिस शोधकार्य का उद्देश्य तत्कालिक परिस्थितियों का अध्ययन और उनकी व्याख्या करना होता है, उसके लिए 'सर्वेक्षण विधि' उपयुक्त रहती है। इसी तथ्य को केन्द्र में रखकर उपर्युक्त विधि का चयन किया है।

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून'।
पानी गये न उबरे, मोती मानस चून।।'

सभी प्रकार के जीवन के लिए जल अति आवश्यक है। जल का विकल्प केवल जल ही है। मानव सभ्यताओं के विकास का इतिहास भी दर्शाता है कि प्रारम्भ में अधिकांश सभ्यताएँ नदियों के किनारे ही विकसित हुई। हमारी आधुनिक सभ्यता किसी न किसी रूप में जल पर ही निर्भर है। प्रकृति के इस अनमोल संसाधन के निर्मम दोहन से इसके प्रबंधन व संरक्षण का संकट उपस्थित हो गया है। इस संकट के समाधान के लिए हमारे पूर्वजों ने जल के संरक्षण के लिए कुएँ, बावड़ी, कुण्ड, झालरा, झील, तालाब, कुण्ड आदि का निर्माण करवाया था।

जल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के शब्द आपः से हुई है। जिसका अर्थ हिन्दी में जल है। प्राचीन हिन्दु शास्त्रों में जल की उत्पत्ति के विषय में बताया गया हे। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरूष सूक्त के 17वें मंत्र में उल्लेख किया गया कि परमेश्वर ने अग्नि के परमाणुओं के साथ जल के परमाणुओं को मिलाकर जल का सृजन किया। प्राचीन हिन्दू मत के अनुसार विराट पुरूष (परम ब्रह्म) ने पृथ्वी के परमाणुकार स्वरूप से स्थूल पृथ्वी तथा उसमें जल की उत्पत्ति की। तैतरीय उपनिषद् के अनुसार परमेश्वर एवं प्रकृति के सम्मेलन से आकाश की रचना होती है, इसके बाद वायु, वायु के बाद अग्नि, फिर जल, फिर पृथ्वी, फिर औषधि, फिर अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरूष की उत्पत्ति होती है।

प्राचीन काल से ही राज्य के द्वारा जल प्रबंधन के प्रयास किये जाते रहे हैं। मनु, चाणक्य व शुक्र ने भी इसे शासक के दायित्वों में से एक माना है। आचार्य कौटिल्य ने शासक के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए व्यक्त किया है कि उन्हें प्राकृतिक स्रोतों से सिंचाई हेतु जल का प्रबंध करना चाहिए। इस कार्य हेतु सभी नागरिकों को भी सहयोग करना चाहिए किन्तु जो स्वयं श्रम न कर सके, उसे अपने बैल व श्रमिक निर्माण कार्य हेतु देने चाहिए। इस हेतु 'सीताध्याध्य' नामक पदाधिकारी की नियुक्ति की जाती थी जो कृषि सिंचाई के कार्यों के प्रबंधन की देखरेख किया करता था। कौटिल्य के अनुसार अकाल आदि आपातकालीन स्थितियों का सामना करने के लिए शासक सर्वप्रथम प्रजा के लिए बीज व खाद्य सामग्री की व्यवस्था करें।

'अपराजितपृच्छा' में भुवनदेवाचार्य ने जल के प्रबंधन पर बल दिया है। उक्त ग्रंथ से ज्ञात होता है कि दुर्भिक्ष से रक्षा हेतु शासक व आम जनता जहाँ भी उन्हें अवसर प्राप्त हो बावड़ी, कूप, तड़ागों और बाँधों आदि जल स्रोतों का निर्माण करवा कर जल का संरक्षण करें।

राजस्थान भारत के सबसे शुष्क क्षेत्रों में से एक है जहाँ के पश्चिमी रेगिस्तान में अत्यन्त कम वर्षा होती है। इसी कारण एक आम राजस्थानी के दैनिक जीवन में जल वह बिन्दु है, जिसे ईद–गिर्द उनका जीवन घूमता है। पानी की इसी कमी के कारण राजस्थानियों ने सदैव ही उसके संरक्षण एवं भंडारण के लिए वैज्ञानिक नवाचार व प्रयोग किए हैं। राजस्थान के सभी समुदायों में बावड़ी बनवाने का कार्य हमेशा ही केन्द्रीय स्थान पर रहा है। दूसरी और राजस्थान में निजी तौर पर बनाई जाने वाली बावड़ियाँ सामुदायिक उपयोग के लिए खुली थी। सहयोग व भाईचारे की भावना प्राचीन और मध्यकालीन जीवन की एक प्रमुख विशेषता थी एवं सार्वजनिक उपयोग के लिए कुँओं, जलाशयों तथा बावड़ियों को खुदवाना एक परोपकारी गतिविधि भी इसी कारण राजस्थान में बावड़ी निर्माण की परम्परा भी प्राचीन है। यहाँ पर प्राचीन काल, पूर्व मध्यकाल एवं मध्यकाल में बावड़ियों के निर्माण की जानकारी मिलती है। ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग पश्चिमी राजस्थान में इस तरह बावड़ी बावड़ी खोदने की परम्परा शक जाति अपने साथ लेकर आई थी। राजस्थान

में बावड़ियों का निर्माण वास्तुशास्त्रीय नियमों के अनुसार हुआ था।

अधिकांश बावड़ियों का निर्माण मंदिरों, दुर्गों या मठों के नजदीक बनाई जाती थी, ये बावड़ियाँ गहरी, चौकोर तथा कई मंजिला होती थी। ये सामूहिक रूप से धार्मिक उत्सवों पर स्नान के लिए भी प्रयोग में आती थी। शिलालेख सिद्ध करते हैं कि राहगीरों, राजपरिवारों, धार्मिक स्थलों, शमशान, यज्ञ और शिकार करने, दान करने, कुण्ड अकाल राहत कार्यों इत्यादि के प्रयोजन से सराय, विश्रामगृह, बावड़ी, कुंड, कुँओं आदि का निर्माण करवाया जाता था।

राजस्थान में राजा–महाराजाओं, सामन्तों, स्थानीय जागीदारों, सेठ–साहूकारों बंजारों और साधुओं आदि ने सड़कों के किनारें, धार्मिक स्थलों पर और यहाँ तक कि दूरदराज के क्षेत्रों में भी जन उपयोग के लिए स्थानीय स्तर पर बावड़ियों का निर्माण करवाया था। राजस्थान के 33 जिलों में 3029 से अधिक बावड़ियाँ और कुण्ड है।

चाँद बावडी, आभानेरी

प्रकृति की इस अनुपम निधि जल को सहेज कर रखने का प्रयास प्रारंभ से ही किया जाता रहा है। जब से मानव में चेतना का संचार हुआ है, उसने जल संचयन के नित–नूतन उपक्रम स्थापित किये हैं। आदिम युग में उसने प्राकृत तरीकों से जल का उपभोग किया और पाषाण काल में उसने पाषाणों का उपयोग जल संचयन के लिए किया। जब से उसने पत्थरों को जोड़कर घर बनाकर रहना सीख लिया तो जल संचयन के लिए कुण्ड, तालाब, वापी और अन्य ऐसी ही विधियाँ खोल लीं। तालाब, कुएँ और बावड़ियों की संरचना कर उसने जल प्रबंधन के बेहतर तरीकों को अपनाया। बावड़ियों, कुँओं और तालाबों के पानी से सिंचाई, पेयजल और जीवन की अन्य आवश्यकताओं को पूरा किया जाने लगा।

कहा जाता है कि राजस्थान पहले मरूभूमि वाला प्रदेश नहीं था, कभी वहाँ समुद्र था और उसकी उत्ताल लहरें हिलोरें लेती थी किन्तु काल के कराल व्याल ने उन लहरों की शैन–शैन सोख लिया। शेष रह गया रेत का समुद्र। प्रकृति के एक विराट रूप ने दूसरे विराट रूप को लील लिया। लहरें अब भी उठती–मचलती है। किन्तु अब रेत के विस्तीर्ण समुद्र में रजकण नर्तन करते हैं। इस सरसब्ज भूमि की नियति बदल गई। विशाल जल राशि का स्थान रेत के अथाह समुद्र ने लिया। अब पानी नहीं, सूरज बदलता है।

रानी की बावडी, बूंदी

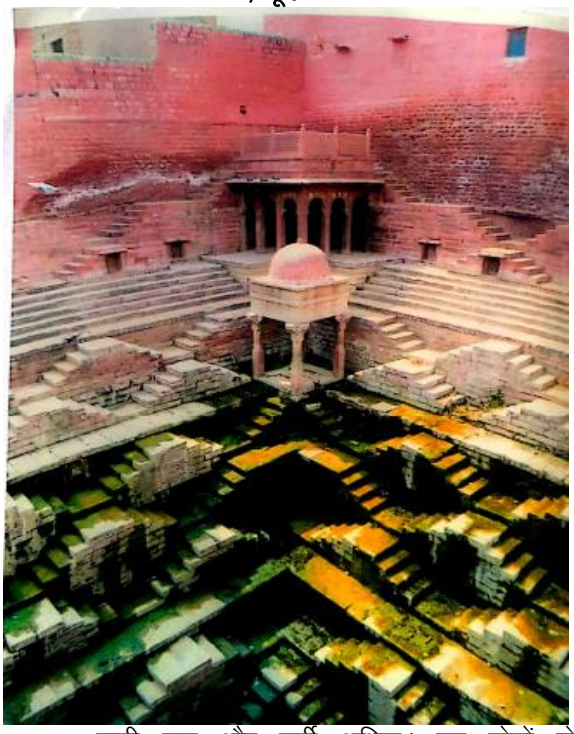

पानी कम और गर्मी अधिक। इन दोनों के समंजन से जीवन और भी अधिक दुभर हो जाता है। बसावट कम और जीवन विरल हो जाता है। विश्व के अन्य मरूस्थलों की प्रकृति भी यही है किन्तु राजस्थान के जिंदादिल और जीवट वाले लोगों ने प्रकृति का यह गणित उलट कर रख दिया। फलस्वरूप यहाँ शून्यता नहीं अब सरसता है, किन्तु यहाँ का जनमानस अपेक्षाकृत अधिक सजीला और रंगीला है।

इन विषम और दुरूह प्राकृतिक परिस्थितियों ने भी राजस्थान का इस कदर रंगीले और जीवंत होने का रहस्य भी यहाँ के जनजीवन में समाहित है। राजस्थान के कर्मठ लोगों ने कभी प्रकृति की इस कृपणता का रोना नहीं रोया, भाग्य को नहीं कोसा अपितु इस अभिशाप को एक वरदान मानकर सुभट योद्धा की तरह प्रकृति प्रदत्त उस चुनौती का सामना किया और संगठित होकर गाँव–गाँव, शहर–शहर वर्षा के अमृत कणों को सहेज कर रखने के तरीके खोजे और फिर सुनियोजित ढंगसे उसे व्यावहारिक रूप प्रदान कर जल को जरूरत के कारागार में कैद कर लिया। पानी की अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उसने वर्षा की इन रजत बूँदों को वर्ष भर सहेज कर रखने की ऐसी भव्य परम्परा विकसित की जिसकी धवल धारा इतिहास के पृष्ठों को रेखांकित करती हुई वर्तमान को उद्‌बोधित करती है।

राजस्थान में यद्यपि मानसून की हवायें दो तरफ से आती है। किन्तु वे रास्ते में ही द्रवीभूत होती–होती जब राजस्थान पहुँचती है तो उनके आँचल में इतना कुछ नहीं

बचता कि वे राजस्थान की धरती को तृप्त कर सकें। इस दृष्टि से राजस्थान की कुंडली मांगलिक ही रही है। किन्तु यहाँ के कर्मठ हाथों के कौशल ने इसे मंगलमय बना लिया। जो कुछ भी मिला उसे संचित कर इस तरह सोख लिया कि वह वर्ष भर पाथेय बन गया।

वर्षा के इन अमृत कणों को पाने के लिए मरूभूमि के लोगों ने खूब मंथन किया और अपने अनुभवों को व्यवहार में उतारने का पूरा शास्त्र ही विकसित कर लिया। इस शास्त्र ने जल को तीन रूपों में बाँटा है। पहला पालर पानी, जो सीधे बरसात से मिलता है। यह धरातल पर बहता है जिसे नदी, तालाब, बावड़ी आदि में संचित किया जा सकता है। दूसरा पाताल का पानी कहलाता है जिसे कुएँ बनाकर निकाला जाता है। तीसरा पानी पाताल और पालर के बीच का है। ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा का माप इसी पानी से होता है। जितना अंगुल पानी धरती में समाये उस दिन उतनी अंगुल वर्षा मानी जाती है।

एक मान्यता के अनुसार बहता हुआ जल निर्मल माना जाता है किन्तु राजस्थान ने तो इस मान्यता भी उलटा दी है। यहाँ वर्षा की एक–एक बूँद का संग्रह करने के लिए गाँव–घरों में कुंडी, कुंड, टांका और बावड़ी आदि बनाकर उसे बड़े जतन के साथ वर्ष भर और उससे भी अधिक समय के लिए उपयोग किया जाता है। इन जल संग्रहण केन्द्रों के पानी को स्वच्छ रखने के लिए उसमें प्रकाश और हवा की व्यवस्था की जाती है।

संस्कृत साहित्य में सिंचाई के साधनों के लिए बाँध, नहर, निका, नाल व नालिका आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है। सौराष्ट्र में स्थित गिरनार की सुदर्शन झील इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसका निर्माण मौर्य शासक चन्द्रगुप्त ने 318 ई.पू. में करवाया था। ग्याहरवीं शताब्दी में भोपाल के निकट भोजपुर में सिंचाई कार्य के लिए मालवा (धार) के राजा भोज परमार (1010–10145 ई.) ने एक झील का निर्माण करवाया था। प्राचीन काल में अनेक राजाओं ने सामाजिक एवं धार्मिक उद्देश्यों से कुँओं, झीलों एवं नहरों आदि जल स्रोतों का निर्माण करवाकर अपनी जल प्रबंधन की सूझ का परिचय दिया था।

मरूप्रदेश में बावड़ी और कुएँ जीवनदायी स्रोत माने गये हैं। यहाँ के तालाबों का पानी पेयजल के लिए इतना काम नहीं आया जितना कुएँ और बावड़ियों का पानी आया है। राजस्थान में अनेक बावड़ियों का निर्माण हुआ। इसका कारण वर्षा के जल को वर्ष भर की आवश्यकताओं के लिए सुरक्षित और स्वच्छ रखना आवश्यक था। बावड़ी बनाने का लाभ यह है कि लोगों को जितने पानी की आवश्यकता होती है उतने ही पानी का दोहन किया जाता है तथा लोग पानी को सुरक्षित करते हुए इसका विवेकपूर्ण उपयोग करते हैं।

राजस्थान में बावड़ियों का निर्माण अधिकांश शहरी परकोटे के भीतर करवाया जाता था। इन बावड़ियों में पानी आने के रास्ते भी छोड़े गये ताकि चारों तरफ का बरसाती पानी इधर–उधर व्यर्थ बहने के बजाये इनमें समा सके। जल पुर्नभरण की यह दूरगामी सोच वास्तव में प्रशंसनीय थी।

छोटी काशी बून्दी में ऐसी सैंकड़ों बावड़ियाँ हैं जो पेयजल उपयोग के लिए जल प्रबंधन के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिए 'बूंदी शहर' को स्टेपवेल्स ऑफ सिटी (Step-Well of City) के नाम से भी पुकारा जाता है।

टोडारायसिंह के लोगों ने जल के महत्व को 1500 वर्षों पूर्व ही समझ लिया था। उन्होंने जल संरक्षण के लिए नगर में अनेक बावड़ियों का निर्माण करवाया जिनकी संख्या लगभग 750 रही होगी जिनमें से लगभग 365 बावड़ियों से नगर में प्रतिदिन पेयजल की आपूर्ति के लिए बनायी गई थी।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में जल की कमी से उत्पन्न होने वाले संकट से मुक्ति के लिए जल स्वावलंबन आवश्यक हो गया है। जिसके अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर जल की बचत तथा जल के उपयोग को व्यवस्थित करना तथा वर्षा जल को स्थानीय स्तर पर संरक्षित कर उसका समुचित प्रबंधन करना है। इसमें इन परम्परागत स्रोतों का कार्यों में उपयोग किया जाए। साथ ही स्थानीय स्तर पर वर्षा जल व भूजल का इस प्रकार से उपयोग किया जाए जिससे भविष्य में स्थानीय स्तर पर जल उपलब्ध हो सके।

वर्तमान में गिरते भूमिगत जलस्तर तथा स्थानीय स्तर पर प्रचलित परम्परागत जलस्रोतों की दुर्दशा तथा वर्षा की कमी के कारण जलसंकट की विकट परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगी। साथ ही बढ़ती जनसंख्या से जल की मांग के कारण संकट और भी गंभीर हो गया है। इस कारण भारत सरकार ने जल क्रांति अभियान तथा राजस्थान सरकार ने मुख्यमंत्री जल स्वावलंबन कार्यक्रम आरंभ किये हैं। जिसके अन्तर्गत परम्परागत जलस्रोतों जैसे– कुएँ, तालाब, नाड़ी, बावड़ियाँ तथा लुप्त हो रहे जल संसाधनों की पुनर्जीवित करने का कार्य किया जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सौलंकी, डॉ. कुसुम, भारतीय बावड़ियाँ, सुभद्रा पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स दिल्ली, 2013, पृ.स.27*
2. *राजस्थान पत्रिका, पत्रिका प्रकाशन, दिनांक 26 अप्रैल 2005, पृ.स.12*
3. *ओझा, प्रियदर्शी, पश्चिमी राजस्थान में जल प्रबंधन, सुभद्रा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2012, कँवर पृष्ठ*
4. *भारद्वाज, दिनेश, बावड़ियों का भौगोलिक अध्ययन, भूदर्शन, 2012, पृ.स.237–38*
5. *कोठारी, गुलाब सम्पादक, पत्रिका इयर बुक, राजस्थान पत्रिका प्राइवेट लिमिटेड, 2012, पृ.स.56*
6. *मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बूंदें, गांधी शक्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995, पृ.स.36*
7. *साईवाल, स्नेह, राजस्थान का भूगोल, कॉलेज बुक हाऊस, जयपुर, 2002, पृ.स.411*
8. *कोठारी, गुलाब सम्पादक, पत्रिका इयर बुक, 2010, पत्रिका प्रकाश जयपुर, 2010, पृ.स.660*
9. *सुजस, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर, 2008, पृ.स.333*